हिंदी साहित्य में वर्णित भारतीय संस्कृति और मानवीय मूल्य

डॉ. राधा भारद्वाज, सहायक प्राध्यापक, हिंदी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फतेहाबाद, आगरा

सारांश :-

संस्कृति को मानव जीवन के मानसिक, नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, कलात्मक तथा व्यावहारिक पक्षों की समग्र अभिव्यक्ति कहा जा सकता है। मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ सीखता है, अपनाता है और व्यवहार में लाता है, वही संस्कृति का निर्माण करता है। संस्कृति का वास्तविक क्षेत्र समाज है, क्योंकि मनुष्य समाज में रहकर ही अपने आचार-विचार, व्यवहार, परंपराएँ, मान्यताएँ और जीवन-मूल्य विकसित करता है। इस दृष्टि से समाज का संपूर्ण क्रियाविधान संस्कृति की रचना करता है। मानवीय स्तर पर इन क्रियाविधियों को संस्कार कहा जाता है। मनुष्य और प्रकृति दोनों मिलकर संस्कारों की रचना करते हैं। प्रकृति मनुष्य को जीवन का आधार प्रदान करती है, जबकि मनुष्य अपने अनुभव, चिंतन और व्यवहार के माध्यम से जीवन-पद्धति का विकास करता है। आचार, विचार और संस्कार संस्कृति के प्रमुख अंग माने जाते हैं। देह और इंद्रियों से उत्पन्न होने वाली क्रियाएँ 'आचार' के अंतर्गत आती हैं, जबकि मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार आदि के द्वारा की गई चेष्टाएँ जब मानवीय चेतना में स्थायी प्रभाव उत्पन्न करती हैं, तब वे संस्कार का रूप धारण कर लेती हैं।

आचार, विचार और संस्कारों में सत् और असत् दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ हो सकती हैं। संस्कृति का मूल्यांकन इन्हीं आचरणों और जीवन-मूल्यों के आधार पर किया जाता है। जिस आचरण के माध्यम से आध्यात्मिक, बौद्धिक, नैतिक और सौंदर्य-बोध की संतुष्टि प्राप्त होती है, साथ ही आत्मिक आनंद की अनुभूति होती है, उसे संस्कृति का उच्च रूप माना जाता है। इस प्रकार संस्कृति केवल बाहरी व्यवहारों का समूह नहीं है, बल्कि वह मानव-चेतना, जीवन-दृष्टि और मूल्य-बोध की गहरी अभिव्यक्ति है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध संस्कृतियों में से एक मानी जाती है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें जीवन के प्रत्येक पक्ष को व्यापक दृष्टि से देखा गया है। भारतीय संस्कृति में विज्ञान, दर्शन, धर्म, अध्यात्म, नैतिकता, कला, साहित्य और सामाजिक जीवन पर हजारों वर्ष पहले ही गंभीर चिंतन किया गया था। वैदिक ग्रंथों, उपनिषदों, पुराणों, महाकाव्यों और अन्य प्राचीन साहित्य में भारतीय जीवन-मूल्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है। भारतीय संस्कृति की महानता उसके समन्वयवादी स्वरूप में दिखाई देती है। यहाँ धर्म और दर्शन के साथ-साथ सहिष्णुता, करुणा, अहिंसा, सत्य, परोपकार, कर्तव्य, परिवार-भावना और विश्वबंधुत्व जैसे मूल्यों को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसी कारण भारतीय संस्कृति केवल भारत तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने पूरे विश्व को प्रभावित किया है। अपनी प्राचीनता, व्यापकता, उदारता और आध्यात्मिक दृष्टि के कारण भारतीय संस्कृति को संपूर्ण विश्व में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

मुख्य संबोध :-

संस्कृति, पश्चिमी संस्कृति, भारतीय संस्कृति, संस्कार, भारतीय दर्शन, मानसिक, नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, कलात्मक, आचार-विचार, आनन्दानुभूति ।

प्रस्तावना :-

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। यह माना जाता है कि भारतीय संस्कृति यूनान, रोम, मिस्र, सुमेर और चीन की संस्कृतियों के समान ही प्राचीन है। भारत विश्व की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है जिसमें बहुरंगी विविधता और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है। भारतीय संस्कृति की सनातनता जिस अंत:प्रवाहिनी चेतना के माध्यम से जानी जाती है उसे इस देश की चिति कहा गया है। विभिन्न प्रकार के आक्रमणों और दबावों के बीच भी भारत की चिति उसकी भारतीयता की रक्षा करती रही। भारतीयता का यह चिति बोध भारतीय आध्यात्मिकता का ही एक रूप है। भारत की जीवन केंद्र आध्यात्मिकता है और इस आध्यात्मिकता को दूसरे अर्थ में धर्म भी कहा गया है। धर्म का सीधा-साधा अर्थ है- जो धारण करता है। भारतीय दर्शन के अनुसार धर्म ही सृष्टि चक्र को धारण किए हुए है। भारतीय संस्कृति में मानव धर्म की प्रतिष्ठा है

विषय प्रवेश :-

भारतीय संस्कृति का स्वरूप :-

संस्कृति के अध्ययनकर्ताओं ने देशकाल के अनुसार संस्कृति का विभाजन किया है। उदाहरणार्थ देश संदर्भित संस्कृतियों में भारतीय संस्कृति के साथ पश्चिमी देशों की संस्कृति को पश्चिमी संस्कृति के रूप में स्मरणित किया जाता है। कालक्रम के अनुसार मध्यकालीन आधुनिक संस्कृति आदि के स्तर पर विवेचित किया जाता है। जब हम इस तरह से सोचते हैं तब संस्कृति की समग्रता को नहीं पहचान पाते है। प्रत्येक देश भू-भौतिक संरचना, उसकी सामाजिक परंपराएँ आदि ही उसकी संस्कृति का निर्माण करती हैं। भारत की प्रकृति परक स्थानिकता, उसकी सामाजिक परंपराएँ, उसका ज्ञानबोध, उसकी दार्शनिक चिंताएँ,भारत राष्ट्रकी निर्मिति करती हैं। यह निर्मिति एक सांस्कृतिक चेतना के माध्यम से अभिव्यक्त होती है, इसलिए इस सांस्कृतिक चेतना को ही हम भारतीय संस्कृति कह सकते हैं।

संस्कृति एक व्यापक शब्द है। संस्कृति को उस उन्नत चेतना से जोड़ा जाता है जिसमें मनुष्य ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मानवीय विकास के उन्नत क्रम में विभिन्न तरह के कार्य संपन्न किए हैं। ये कार्य जीवन की सभी दिशाओं को समृद्ध करनेवाले हैं। मनुष्य ने अपने जन्म के साथ ही अपनी सृजनोन्मुखी चेतना के माध्यम से जो कार्यकलाप संपन्न किए वे संस्कृति के आधार बनते हैं। "संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा की 'कृ' धातु में 'सम्' उपसर्ग और 'इक्तन्' प्रत्यय लगने से बनता है। जिसका अर्थ भूषण भूत सम्यग् कृति (चेष्टा) से लिया जाता है।"[1]

भारतीय संस्कृति के मूल्य :-

संस्कृति अभी तक आत्मपरीक्षण के दौर से गुजरती रहती है। मनुष्य जो कुछ भी करता है उस किए हुए को परीक्षित करने के लिए जिन कसौटियों का निर्धारण किया है वे कसौटियाँ ही मानव जीवन का मूल्य बनती है। ये जीवनमूल्य उत्तरोत्तर जीवन विकास के आधार होते हैं। एक तरह से उदात्त जीवन-दृष्टियाँ ही मूल्यों में निहित होती हैं। व्यक्ति मूल्य व सामाजिक मूल्य, यद्यपि यह दो कोटियाँ अलग-अलग दिखाई देती है। लेकिन यह अंर्तनिहित संसार में एकत्व को ही प्रदर्शित करती रहती हैं। मूल्यों की उत्सभूमि भाव पर आधारित है। किन्तु मूल्य चेतना का निर्माण एक तरह की बौद्धिक प्रक्रिया भी है।

भाव और बुद्धि के समन्वय में मूल्य चेतना को समाहित किया है। भारतीय जीवनमूल्यों के निर्धारण में मनीषियों ने व्यापक सामाजिकता को एक आधारभूत ढाँचे की तरह प्रस्तुत किया है।

भारतीय संस्कृति में चतुर्वर्ण व्यवस्था, चार आश्रमों की स्थापना, चार पुरुषार्थों का नियोजन भारतीय मूल्य दृष्टि का ही स्वरुप निर्धारण है। यह सभी व्यवस्थाएँ एक तरह से व्यक्ति और समाज के भीतर संतुलन स्थापना करने का महत् प्रयास है। चतुर्वण व्यवस्था में जीवन, व्यवसाय को बाँटकर सामाजिक मूल्यों का निर्धारण किया गया था। चतुर्वर्ण व्यवस्था सामाजिक मूल्यों को निर्धारित करने की अपने समय की एक प्रक्रिया थी।

ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्यांसाश्रम इन चार आश्रमों के रूप में व्यक्ति के जीवन विकास के मूल्यों को सम्मिलित किया गया था। इसमें भोग और त्याग भारतीय मूल्य मीमांसा का निर्देशन है। ब्रह्मचर्याश्रम शरीर और ज्ञान की पुष्टि के लिए, गृहस्थाश्रम परिवार और समाज के संरक्षण और उसकी अभिवृद्धि के लिए। वानप्रस्थाश्रम जीवन में त्यागवृत्ति के उदय के लिए और सन्यासाश्रम पूर्ण त्याग के लिए। "वन में रहनेवाला व्यक्ति दो काम करता था, एक तो विद्यार्थियों को पढ़ाता था, वही कुलपति होता था। दूसरे वह राज्य-व्यवस्था, जनपद-व्यवस्था, ग्राम-व्यवस्था और व्यक्ति लोक से जोड़नेवाले नियमों की व्यवस्था की पुनर्व्याख्या करता था। वही नियामक था, उसकी पूरी जीवनचर्या सर्वात्मा के लिए सर्व होकर आहुति थी, विराट और अविच्छिन्न यज्ञ-क्रिया थी, उपासना थी, अपनी दिव्यता की निरन्तर खोज थी।"[2]

इस रूप में भारतीय मूल चेतना संग्रह और त्याग की यात्रा का नाम है। संग्रह समाज में वितरण के लिए और त्याग जीवन के मोह से विरक्त होने के लिए। जीवन के चार पुरुषार्थ जो भारतीय संस्कृति में निर्देशित किए गए हैं वे चारों पुरुषार्थ भारतीय संस्कृति की मूल्यचेतना के मानक हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष यह पुरुषार्थ चतुष्ठ्य व्यक्ति और सामाजिक मूल्यों की समन्वयवादी दृष्टि की उदात्त भूमिका प्रस्तुत करते हैं। "धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों में गहरा संबंध है। मोक्ष से धर्म का गहरा संबंध है। सभी प्राणी केवल धर्म का आश्रय ग्रहण कर तथा उसी के अनुसार आचरण कर मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। इसलिए कहा गया है कि मनुष्य अर्थ एवं काम का सेवन करता हुआ मोक्ष को प्राप्त करे। कौटिल्य ने कहा है कि व्यक्ति संसार में रहकर सारे ऐश्वर्य प्राप्त करे, उपभोग करे, धन संचय करे, किन्तु सब धर्मानुकुल हो। उसके मूल में धर्म का अनुष्ठान हो। काम के लिए भी वात्स्यायन ने कामसूत्र में कहा है कि वही काम प्रवृत्ति पुरुषार्थ के अंतर्गत आ सकती है जो धर्म के अनुरूप हो। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि धर्मपूर्ण काम में ईश्वर विद्यमान रहता है। इसप्रकार धर्मानुकूल अर्थ व काम का सेवन करने से मनुष्य परम पुरुषार्थ-मोक्ष के समीप पहुँचता है।"[3]

इन मूल्य चेतना में अर्थ और काम के बीच धर्म है। अर्थात अर्थार्जन और इच्छाओं के बीच में धर्म का संयम होना चाहिए। धर्म यह स्पष्ट करता है कि अर्थ इतना जितने में जीवन और उसकी सामाजिकता का निर्वाह हो सके। और इच्छाएँ इतनी कि जो धर्म का पालन करते हुए पूरी की जा सके। और अंतिम स्थिति मोक्ष की है जो सर्वोपरि महत्वपूर्ण मानी गई है। यह संपूर्ण वैयक्तिक एवं सामाजिक साधना जिन मूल्यों का निर्धारण करती है उन मूल्यों को हम मानव मूल्य कह सकते हैं।

भारतीय संस्कृति की यह अनुपम देन है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, आस्तेय, अशौच, दया, करुणा, परोपकार जैसे मूल्य ही मानव धर्म को प्रतिष्ठित करते है।भारतीय दृष्टि में यही मूल्य महत्वपूर्ण हैं। भारतीय संस्कृति में इन्हीं मूल्यों की प्रतिष्ठा विभिन्न सम्प्रदायों ने स्वीकार की है। जैन, बौद्ध , आदि सभी

सम्प्रदाय इन्हीं जीवनमूल्यों को स्वीकृति देते हैं। इन सबसे जुड़ा हुआ सिद्धांत ऋण-व्यवस्था के रूप में भी है। "भारतीय संस्कृति की ऋण-व्यवस्था व्यक्ति को समाज के अन्य सदस्यों के प्रति उनके कर्तव्यों का ध्यान दिलाती है। देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण अतिथि ऋण तथा भूत ऋण, ऋण व्यवस्था के अंतर्गत आते हैं।"[4] उस व्यवस्था के माध्यम से मनुष्य में परमार्थ तथा कर्तव्यपरायणता के गुण उत्पन्न होते हैं। इन सभी ऋणों को चुकाने के पश्चात् ही मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

इस रूप में भारतीय जीवन मूल्य व्यक्तित्व विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास की बड़ी भूमिका की निर्मिति करते थे। भारत के सभी आर्ष ग्रंथ इन्हीं जीवनमूल्यों के कोष है। लोग कहते हैं, "भारतीय संस्कृति हिंदू संस्कृति नहीं, मुस्लिम संस्कृति नहीं, बौद्ध संस्कृति नहीं, सामायिक संस्कृति है। एक हद तक यह बात स्वीकार की जा सकती है किन्तु फिर भी मनुष्य की जीवन पद्धति को मुख्य बिन्दु मानकर ही संस्कृति को परिभाषित किया जा सकता है।"[5]

भारतीय संस्कृति का मूल उद्देश्य मानव को श्रेष्ठ अथवा शिष्ट पुरुष बनाना है, उसे आचारवान की श्रेणी में लाना है। अच्छा आचार एवं स्वभाव सुरभिपूर्ण सुमन की तरह होता है। शिष्ट मनुष्य अपने शिष्ट आचरण से सर्वत्र एक सुहावनी सुगन्ध छोड़ देता है। सब जगह वह प्रभावी हो उठता है। साहित्य समाज का दर्पण है और समाज का निर्माण संस्कृति से होता है। वास्तव में साहित्य समाज और संस्कृति तीनो ही एक दूसरे के अनुपूरक कहे जा सकते हैं, क्योंकि किसी एक का भी अस्तित्व दूसरे के बिना संभव हो ही नहीं सकता।

संस्कृति के संदर्भ में अक्सर कहा जाता हैं कि, "जाति और समुदाय की आत्मा किसी देश की संस्कृति ही होती है। देश के नागरिकों में नैतिक मूल्य और जीवन आधार उस देश की संस्कृति से ही उन्हें मिलती है। समग्र रूप से देश का आदर्श वहाँ की संस्कृति ही होती है। भारत देश की संस्कृति में मानवता सर्वोपरि है। भौतिक जीवन से परे आध्यात्मिक ज्ञान की महता यहाँ पर प्राचीन समय से है। यहाँ प्रेम की संस्कृति है।"[6]

अत: कहा जा सकता हैं कि, भारतीय संस्कृति संपूर्ण विश्व में सबसे अनोखी संस्कृति है। भारतीय संस्कृति की विविधता के कारण हम कह सकते हैं कि, इस भारत देश में अनेकता में एकता की सुमधुर गंगा की धारा बहती है, जो हिमालय के उत्तर से निकलकर कन्याकुमारी के सागर से जा मिलती है। हजारों वर्षों की संस्कृति व सभ्यता अपने आँचल में समेटे हुए भारतभूमि विश्व पटल पर विश्व गुरु की महती भूमिका निभा रही है, जो हर भारतवासी के लिये गौरव की बात हैं।

निष्कर्ष :-

1. संस्कृति एक व्यापक शब्द है। संस्कृति को उस उन्नत चेतना से जोड़ा जाता है जिसमें मनुष्य ने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में मानवीय विकास के उन्नत क्रम में विभिन्न तरह के कार्य संपन्न किए हैं। ये कार्य जीवन की सभी दिशाओं को समृद्ध करनेवाले हैं।
2. संस्कृति मानवीय सौन्दर्य भावनाओं एवं कार्यकलापों का समुच्चय है। संस्कृति व्यक्ति और समाज के अंर्तसंबंधों की ही परिणति है। यह एक ऐसी परंपरा है जिसमें निरंतर मूल्यानुसंधान होता रहता है, आत्मसाक्षात्कार होता रहता है और आत्माक्रियाएँ गतिशील होती रहती है।

3. भारतीय संस्कृति भौतिकता एवं आध्यात्मिकता में जीवनसत्वों की तलाश में संलग्न रही है और ससीम से असीम की ओर तथा भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर ले जानेवाली है।
4. भारतीय संस्कृति के जीवनमूल्य व्यक्तित्व विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास की बड़ी भूमिका की निर्मिति करते थे। भारत के सभी आर्ष ग्रंथ इन्हीं जीवनमूल्यों के कोष हैं।
5. भारतीय संस्कृति में चतुर्वर्ण व्यवस्था, चार आश्रमों की स्थापना, चार पुरुषार्थों का नियोजन भारतीय मूल्य दृष्टि का ही स्वरुप निर्धारण है। यह सभी व्यवस्थाएँ एक तरह से व्यक्ति और समाज के भीतर संतुलन स्थापना करने का महत् प्रयास है।
6. भारतीय संस्कृति की यह अनुपम देन है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, आस्तेय, अशौच, दया, करुणा, परोपकार जैसे मूल्य ही मानव धर्म को प्रतिष्ठित करते है। भारतीय दृष्टि में यही मूल्य महत्वपूर्ण हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. बिहारी सतसई का सांस्कृतिक अध्ययन, शब्द और शब्द प्रकाश, डॉ. श्यामसुंदर दुबे, दिल्ली, प्र.सं. 1969, पृ. क्र. 18
2. भारतीय चिन्तनधारा, विद्यानिवास मिश्र, पृ. क्र. 73
3. भारतीय संस्कृति एक अध्ययन, डॉ. सीमा शर्मा, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्र. सं. 2016, पृ. क्र. 114
4. भारतीयता के अमर स्वर, धनंजय वर्मा, पृ. क्र. 156-157
5. भारतीय संस्कृति के आधार, विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. 2001, पृ. क्र. 10.
6. https://thespiritualindia.com/bhartiya-sanskriti-per-nibandh-lekhan-indian-culture-in-hindi/